Online at: https://researchtrendsjournal.com ISSN No: 2584-282X

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 2; Issue 3; 2024; Page No. 70-73

Received: 04-02-2024
Accepted: 12-03-2024

विवेकी राय के साहित्य में भिन्न–भिन्न शोध परक दृष्टि से शिल्प पक्ष की नवीनता का अध्ययन

[1]आनन्द सावरण और [2]डॉ. नवनीता भाटिया

[1]शोधार्थी, ग्लोकल स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड सोशल सांइसेज, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी मिर्जापुर पोल, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2]शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, ग्लोकल स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड सोशल सांइसेज, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी मिर्जापुर पोल, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author: आनन्द सावरण

सारांश
विवेकी राय के साहित्य में ग्रॉम–आंचन की संस्कृति का समग्रह रूप दिखलाई पड़ता है जिसमें ग्रामीण परिवारों की भावना उनके विचार एवं लोगों के जीवन को दृष्टव्य किया है। विवेकी राय के विचार मार्मिक, सुन्दर, सरल एवं व्यवहारिक है, जिनमें जीवन का यथार्थ है। विवेकी राय हिंदी जगत के उन गिने–चुने साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अपने साहित्य का आधार बनाया। वे जिस अंचल में रहते हैं वह अंचल ही उनके साहित्य का प्रेरणा स्रोत है, वही शब्द है, वही छंद है, वही राग है और वही साज और आवाज है। वहाँ की बोली–बानी, तीज–त्योहार, रहन–सहन, दुख–दर्द, आशा–निराशा, छल–छद्म को वहाँ की सामाजिक पहचान के साथ, उसकी तह तक जाकर अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। यह निबन्ध संग्रह उनके रचनात्मक विकास का बहुत ही महत्वपूर्ण चरण है। जिस तरह से उन्होंने अपने अनुभवों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति अपने कथा–साहित्य में की है उसी तरह से अनुभव के लालित्य को इन निबन्धों में अत्यंत रोचक तरीके से व्यक्त किया है। ग्रामीण जीवन का लालित्य यहाँ चिन्ता के रूप में भी आया है।

मुख्य शब्दः विवेकी राय, शिल्प पक्ष, नवीनता, विचार मार्मिक, सुन्दर, सरल

प्रस्तावना
स्वातंत्र्योत्तर काल में विशेषकर हिन्दी साहित्य को दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना जाता है। एक ओर उसने प्रत्येक साहित्य विधा में भोगे हुए जीवन–सत्य को उद्घाटित किया, तो दूसरी ओर देश के उपेक्षित अंचलों को सजीवता के साथ चित्रित किया। अंचलों की ओर ध्यान जाना–अनुभव की दृष्टि से महत्वपूर्ण था ही, अपने देश के वास्तविक स्वरूप में जानने– पहचानने प्रमाणिकता की आवाज की दृश्टि से भी महत्वपूर्ण रहा है। एक ओर हिन्दी साहित्य अनुभव की को उठा रहा था, तो दूसरी ओर स्वतंत्र भारत में स्थित, उपेक्षित और दुर्लक्षित गॉवों और पहाड़ी भूभागों की महत्ता का चित्रण कर रहा था। इन दोनों तथ्यों का संगम हुआ है ऑचलिक साहित्य में।
निबन्ध–संग्रह को समझने के लिए विवेकी राय के साहित्यिक सफर को समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि इस संग्रह के निबन्ध अनेक जगहों पर इनके पूर्ववर्ती साहित्य की ओर झाँकने के लिए विवश कर देते हैं। हिंदी उपन्यास लेखन में विवेकी राय का आविर्भाव 'बबूल' (1967) के साथ होता है। उसके बाद 'पुरुषपुराण', 'लोकऋण', 'श्वेतपत्र', 'सोना माटी', 'समर शेष है', 'मंगल भवन' और 'अमंगलहारी' के रूप में उनके कथा लेखन का विस्तृत परिक्षेत्र विकसित हुआ है। इन सभी उपन्यासों का यहाँ उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि 'उठ जाग मुसाफिर' के निबन्ध भी किसी न किसी रूप में इन उपन्यासों से जुड़ते हैं और यही एक सुचिंतित साहित्यकार की संवेदनात्मक गहराई होती है। ऐसा लगता है जैसे यह निबन्ध संग्रह उनके कथा लेखन के बृहद अनुभव का निचोड़ है। जिस तरह की सरसता इन निबन्धो में है वह बिरले देखने को मिलती है। विवेकी राय मूलतः ग्रामीण जीवन से अभिप्रेरित साहित्यकार हैं। उनका संपूर्ण साहित्य ग्रामीण अनुभूतियों में रचा–बसा है। 'बबुल' से लेकर 'उठ जाग मुसाफिर' तक विवेकी राय की समर्थ और यथार्थवादी रचनात्मक दुनिया ही उनकी पहचान है। 'उठ जाग मुसाफिर' में दस निबन्ध हैं जो लगभग समाप्त होती हुई इस साहित्यिक विधा के लिए पुनर्जीवन की तरह हैं।

शोध परक दृष्टि से शिल्प पक्ष की नवीनता
प्रत्येक समर्थ रचनाकार अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के अनुरूप निज की शैली विशेष का समर्थन करता है। शैली एक रचनाकार के सोच व्यवहार और चेतना का प्रतिबिम्ब और व्यक्तित्व विशेष का परिचायक भी है। इस संदर्भ में डा. बच्चन सिंह का मत समीचीन है, ''शैली अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति होती है। जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने भावों और विचारों की अपेक्षा अपने को अधिक

अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में रचनाकार का अपना उद्देश्य, स्वभाव, दृष्टिकोण, जीवन प्रणाली, आस्था विश्वास संदेह आदि व्यक्त होते चलते है। यही उसकी अस्मिता होती है। इसमें केवल मानस की अभिव्यंजना नहीं होती बल्कि सम्पूर्ण जीवन प्रणाली की होती है।'

रचनाकार अपनी इच्छित विषयवस्तु के सम्प्रेषण हेतु विभिन्न शैली या पैटेर्नों का इस्तेमाल करता है। डा. विवेकीरायजी ने भी अपने उपन्यासों में चित्रात्मक शैली, संस्मरणात्मक शैली, रेखाचित्र शैली, निबन्धात्मक शैली, डायरी शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवादशैली, फ्लैशबैक शैली, लोककथात्मक शैली, तथा लोकगीतात्मक शैली का समुचित प्रयोग कर दिया है।

चित्रात्मक या फोटोग्राफिक शैली

एक फोटोग्राफर का किसी दृश्य का चित्र खीचने के समान आंचलिक उपन्यासकार किसी घटना या दृश्य का अंकन ज्यों का त्यों तटस्थ से करता है। चित्रात्मक शैली के जरिए पात्र एवं परिवेश का जीवंत समावेश संभव है। इस शैली में बौद्धिकता और सौन्दर्य का समन्वित रूप पाया जाता है।

डा. रायजी के 'लोकद्धण' में नीलांबरन गाँव के संथालों के वर्णन में फोटोग्राफिक शैली का स्वरूप दर्शनीय है कि ''नीलांबरन गाँव के संथालों के घर का चित्र धरमू के मन पर अत्यधिक चटकता से उभर आता है। गाँव के बीचों बीच खूब चौड़ा, एक सीधा में, जैसे नाप कर बनाया गया मार्ग, कच्ची सड़क, बहुत साफ, कहीं कोई गन्दगी नहीं, उसके दोनों और रंगीन डिब्बे की तरह छप्पर वाले कच्चे घर, घर की दीवारों एक दम सीधी, जैसे सिमेंट से प्लास्टर किया गया। ईंट का पक्का घर, उस पर सफेद माटी की पवित्र पुताई, फिर काली, नीली, पीली और लाल माटी के चटक रंग की चौड़ी–चौड़ी पट्टियों की कढ़ाई या प्लेन रंगीन पुताई....।

सोनामाटी में महुआरी गाँव के लोग होली मनाते है। यह चित्रात्मक शैली का स्पष्ट परिचायक है कि, ''महुआरी में हर साल की भाँति होली धमकी गयी। वस्त्र और भोजन के नवोल्लास के साथ गाने–बजाने की धूम भी उतर आयी। हर साल की तरह 'सम्मत–बाबा' फूँके गये और होलरी जलाकर उसे लुकार जैसे भोजते लोगों की भीड़ सीवन की ओर बगटूट भगी.... हो–हो–हो होल्लरी।''

'मंगल भवन' में भारत–चीन युद्ध के दौरान सैनिकों के सहायतार्थ सरइया कालेज में एक नाटक का मंचन हुआ। यहाँ भी फोटोग्राफिक शैली दर्शनीय है। जैसे– ''3 नवम्बर सन् 1962। सरइया का महावीर इंटर कालेज। युद्ध में सहायतार्थ नाटक खेला जा रहा है, हिन्दी अध्यापक मुझे विक्रम लिखित 'साथ केहूँ नइयार बा'।..... परदा उठता है तो मंच पर हलकी रोशनी में कुछ सैनिक परेड करते एक ओर से आते हैं ओर दूसरी निकल जाते हैं। नेपथ्य में सैनिक बैंड पर युद्ध की प्रयाण ध्वनि हलके–हलके बज रही है.....।''

'नमामि ग्राममय का परिवेश फोटोग्राफिक शैली का मूर्तरूप है। ''अपने दिव्याश्व पर आरूढ़ होकर वायु वेग से मालिक नित्य खेतों की ओर जाते हैं। उतनी ही तेजी से नौकर चाकर भी दौड़े हुए जाते हैं। जहाँ कहीं इच्छा होती है, वे कूद पड़ते हैं और चट सेवक घोडे की रास पकड़कर टहलाने लगता है। प्रत्येक कार्य में बडप्पन है।''

'देहरी के पार' में कथानायक की साँची यात्रा में चित्रात्मक शैली दर्शनीय है कि ''साँची पहुँचकर वसंत की नरम–गरम धूम में स्तूप नंबर से लेकर बुद्धा टेंपल आदि तक हम लोग देर तक घूमते रहे। लड़के के केधे पर लटका हुआ कैमार रह–रहकर मचलता था, परन्तु उसे उपयुक्त स्थल नहीं मिल रहा था।''

डा. विवेकीराय जी के सभी उपन्यासों में फोटोग्राफिक शैली अवश्य परिलक्षित हुआ है। इनमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के उपेक्षित अंचलों, त्योहारों एवं प्राकृतिक सुषमा का वास्तविक चित्र एवं मानवीय व्यवहारों का मर्मस्पर्शी स्वरूप मौजूद है।

संस्मरणात्मक वा पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) शैली

पात्र की स्मृति में अतीत की कुछ घटनायें सदा सर्वथा ताजी रहती है। अनेक प्रसंगों में पात्र स्वप्न जीवि सा प्रतीत होता है। वे इस स्थिति में अतीत की घटनाओं का ब्योरा भी देते हैं। डा. रायजी के उपन्यासों में इस शैली का समग्र परिपाक हुआ है। 'लोकऋण' में स्वप्नजीवी, पात्र, धरमू की कथा रोचक है। अपनी पत्नी बड़की को बनारस के अस्पताल में दाखिल करते समय धर्मराज के मन में स्मृतियों का जुलूस गुजरता है कि ''रास्ते में बितनी का संग हो जाने से धरमू अजीब सपनों में उलझा गया। पालकी के कहार फाल कसकर चल रहे थे और मोहना तथा गोपी यह दिखाने के लिए कि हम लोग भी कम नहीं, उनके सिर पर चढ़े रहते थे। ऐसी स्थिति में धरमू और बितनी का पिछड़ा जाना स्वाभाविक ही था... बितनी ने धरमू की सोयी हुई याद को जगा दिया। हिलता टुलती जीर्ण साड़ी के भीतर उभरती मिटती एक नारी देह की रेखाओं में धरमू अनेक मानसिक चित्र अंकित करना अतीत की गहराइया में उतरा तो ही गया...।''

पुरूष पुराण' में दुखन कुम्हार पोतहु से हुए कलह के कारण घर छोड़कर सिलहट के चायबागन में पहुँचता है। उस समय की घटनाओं का वर्णन पूर्वदीप्ति शैली में हुआ है। दुखन ग्रामवासियों से कहता है कि, ''चायबगान के पास जंगल में ढेर–ढेर बाध रहते हैं, वहाँ इसी की खेती है। हजार–हजार जान उसकी पत्ती तोड़ने का काम करते हैं 'दुमहले' पर पत्ती सुखायी जाती है। बगान के पास एक गाँछी है। एक दिन हमने देखा कि उसके पपास एक बाध बैठा है...।''

डायरी शैली

डायरी एक व्यक्ति की निजी दस्तावेज है। डायरी शैली में कथा एवं पात्रों के चरित्र. का विकास डायरी के पन्नों के माध्यम से होता है। डा. विवेकीरायजी का प्रथम उपन्यास 'बबूल' डायरी शैली में लिखा गया है। उपन्यास का आरंभ चित्रगुप्त और उनके सहायक प्रबुद्धशील के वार्तालाप से होता है। चित्रगुप्त के आदेशानुसार मास्टर प्रबुद्धशील महेसवा नामक गरीब हरिजन चमार की जीवन गाथा तय करने के लिए एक अध्यापक के रूप में बाढ़नपुर गाँव में पहुँचता है। वह डायरी का शुभारंभ धुबारिन शीर्षक से करता है। यह डायरी शैली का मूर्तरूप है कि ''आज पहले दिन डायरी लिखने बैठा हूँ। जी चाहता है कि कलम उछाल दूँ। जो कुछ आँखों के सामने है उसकी भीषण मनोहारिता धका देती है। यह गाँव, यह दूर का ढ़ोल, यह नरक और इसी में मुझे स्वर्ग खोजना है, हँसी–खुशी खोजनी है। लोग मुझे प्रबुद्ध कहते हैं, परन्तु यहाँ तो बोध घटने टेक देता है। अध्यापक होने का सहारा गुमन चकनाचुर मालुम होता है कि ककहरा अभी शुरू करना है। कठिन पाठ है...।'' आगे उनकी डायरी के छब्बीस पृष्ठ उपस्थित है। 'बबूल' में डायरी के पन्नों से कथानक एवं पात्रों का चरित्र विकसित होता है। यह शैली से घटना और परिस्थिति विशेष में अंतर्निहित मनोभावों का स्पष्ट परिपाक है। पात्रों के मनोविश्लेषण में यह शैली अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है।

रेखाचित्र शैली

शब्दों के माध्यम से एक व्यक्ति की छवि रेखाचित्र में खींचा जाता है। 'बबूल' में नंगे, भूखे, शोषित एवं असहाय महेसवा के वर्णन में रेखाचित्र का सहारा लिया गया है। ''यह पाँच–छः साल का लड़का सामने है। कौन कह सकता है कि यह आदमी का लड़का है? शरीर एकदम काला। वस्त्र के नाम पर कमर में एक करधन है। हाथ पैर कान चूहे की तरह सपटे से है। धने–काले बालों में

खरपात उलझे हैं। मिट्टी और राख लिपटे जैसे गदींले शीर पर कहीं–कहीं पानी के छीटे पड़ने से चित्तियाँ जैसे उभर आई है...।'' पुरूष पुराण' दुखन कुम्हार के बयान से शुरू होता है जैसे–''बुढ़वा आ रहा है। खट्ट–खट्ट–खट्ट–फाल–फाल पर बज रहा है सोटा। एकहरी हड्डियों का झुका–झुका धनुषाकार लँगोटिया शरीर, पेट सटकर पीठ की ओर खिंचा चश्मा और चप्पल अपनी ओर से जोड़ दें तो एक और इस गाँव का गाँधी। हाँ ठीस, वैसा ही लचीजा, मगर कुछ अधिक हटीला। बहुत पवित्र है काया। रोये रोये में न जाने कितनी बारह खण्डी, अर्जुनगीत, हनुमान चालीस और भजनमाला आदि की पंक्तियाँ गुँथी हुई है।''

आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली में कथ्य की अवधारणा प्रथम पुरूष शैली में होती है। इस शैली में होती है। इस शैली में लिखे उपन्यासों में पात्र अपना परिचय स्वयं पेश करता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति का आत्म विश्लेषण और आत्ममंथन किया जाता है। 'प्रथम पुरूष' शैली में रचित उपन्यासों में डायरी, पत्र एवं संस्मरण शैली का भी सम्यक परिपाक दृष्टव्य है। डा. विवेकीराय जी ने अपने उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली का सशक्त प्रयोग कर दिया है।

'पुरूष पुराण' में दुखन कुम्हार के जीवन में आयी टकराहट की अभिव्यक्ति आत्मकथात्मक शैली में हुई है। दुखन और उनके पोतहु के बीच झगड़ा हुआ। इस झंझट के कारण वह सिलहट गया। बूढ़ापे में वह वापस अपना गाँव लौट आता है। सत्तर वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु भी हुई। दुखन बताता है, ''बहू का काम पूरा हो चुका है। मिट्टी की दीवारें कोमल हाथों का सहलाव पाकर सहज चिकनाई से दमक उठी है। दूधिया–सी मिट्टी घोल एक तरफ पोताई भी हो गई है...।''

वार्तालाप या संवाद शैली

आंचलिक उपन्यासों में समूह पात्र महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। परिवेश, स्थिति एवं प्रसंग को मूर्त करने में संवाद शैली का स्थान सर्वोपरि है। डा. रायजी के 'बबूल' में संवाद शैली के जरिए वहाँ के ग्रामीण कृषक मजदूरों की आर्थिक विपन्नता उजागर होती है। महेसवा और मालिक के बीच का वार्तालाप इस का दृष्टांत है। ''सूतों दीजिए मालिक'' एक, जो पास में बैठा था बोला, हम लोगों को जाड़ा नहीं लगता। जाड़ा उसे सताता है जिसके पासा कपड़ा है। साग–सत्तू धोलकर नहीं पुआल में धुंसड़ पड़ेंगे अथवा एक में एक गोच्यिकार पड़े रहेंगे।''

'पुरूष पुराण' में दुखन कुम्हार के माध्यम से भोजपुरी संस्कृति का समावेश किया गया है। ''तुमने कुम्भकर्ण को देखा है दुखन?'' मैं पूछता हूँ और सोचता हूँ अब मनोरंजन होना चाहिए। ''भाग्य से आ गये आपजी, तो बात सुनिए। सात जन्म में भी किसी को कुछ मालुम नहीं हो सकता। कोई क्या जानता है? मैं जातना हूँ तो कहता हूँ...।''

लोकऋण' में रायजी ने संवाद शैली के सहारे रामपुर गाँव चुनावी राजनीति का पर्दाफश कर दिया है। गिरीश्चा और त्रिभुवन के बीच का वार्तालाप इसकी गवाही देती है। 'अब इस सभापति के चुनाव के बाद गाँव बचेगा नहीं, 'क्यों'? 'यहाँ नक्सली बढ़ गये हैं।'

निबन्धात्मक शैली

एक निबन्ध के समान समग्र विवरण निबन्धात्मक शैली की विशेषता है। महेसवा के बचपन की कहानी की अवधारणा निबन्ध शैली का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यहाँ महेसवा का सम्बन्ध छतरी से जोड़कर कहता है कि ''काले अनादि काल में गोरो की छत्र छाँह करते आये हैं। स्वयं को जलाकर उन्हें ठंडक पहुँचाते आए हैं। मुझे लगा कि देश के कोटि–कोटि काले यानी गरीब, मजदूर, भूखे, नंगे और अभागे छाते के समान है।''

मंगलभवन' में भारत–चीन युद्धवर्णन निबन्ध–शैली में हुआ है। ''शत्रु सैनिक बोमादिला से वापस जा रहे हैं। अरे ये सैनिक है? दिखाई पड़ता है कि लुटेरों का लंबा काफिला मय लूट के यमान चले आ रहा है। आगे एक गाँव एक घर पर सैकड़ों दूट पेड। फाटक खुल गया। घर के भीतर के कुहरम . . .?।''

लोक कथात्मक शैली

इस शैली में पूर्वी उत्तर प्रदेश के आंचलिक जनजीवन की स्पष्ट झलक पायी जाती है। पोथी के प्रभाव में 'पुरूष पुराण' के दुखन गंवार लड़कों के बौद्धकाल की एक जातक कथा सुनाता है,''... उसमें कोई चर्मशाटक परिब्रजक भेडा लड़ाने वाले स्थान पर पहुँचता है। देखता है कि एक भेंडा झुकता हुआ उसे देखकर पीछे की ओर दबकता है। कितना विनम्र है यह भेड़ा। परिब्राजक घोषण करता है, इतने लोगों में यह भेड़ा है जो वास्तव में मेरे गुण को जानता है और अभिवादन कर रहा है। इसीबीच भेडा कुलांच लगाकर सींगों से इस प्रकार छोड़ देता है कि चर्मशाटक महाराज चारों खाने चित हो जाते हैं। तुम्बा–तसला फूट जाता है। घायल होकर परिब्रजक तो असलियत को समझता है कि नवीन नीच की अति दुखदायी।''

लोकगीतात्मक शैली

लोकगीत आंचलिक परिवेश का अभिन्न अंग है। इनमें ग्रामीण जीवन की निजी अनुभूतियों, संवेगों एवं उनकी सौन्दर्य चेतना प्रतिफलित होती है। डा. रवीन्द्रभ्रमर ने लोकगीतों के बारे में लिखा है, ''लोकगीतों में गाँव के प्राणों का स्पंदन होता है तथा उनका समूचा अंतर वैभव इन गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है। परंपरा के रूप में गाए जाने वाले ये लोकगीत जिनके रचयिताओं का कोई परिचय नहीं होता है, कभी–कभी गायकों के व्यक्तित्व के साथ मिलकर एकाकार हो जाते हैं।'' डा. रायजी के उपन्यास पूर्वी उत्तर प्रदेश के अंचलों में प्रचलित पर्व त्योहार, ऋतुवों एवं धार्मिक संस्कारों, देशभक्ति आदि से जुडे लोकगीतों के यथातथ्य वर्णन से दीप्त हो उठे हैं।

भाषा–शैली की विशिष्टता

विभिन्न परिस्थितियों को प्रदर्षित करने वाले चरित्रों की परिकल्पना कर उपन्यासकार अपने उद्देष्य को प्राप्त करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। भाषा भावों की अनुगामिनी है जो पाठकों के हृदय को स्पर्श करती है। भाषा–शैली की दृष्टि से भी यह उपन्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया है। मुहावरेदार भाषा का प्रयोग वाक्यों को उपयोगी और प्रभावशाली बनाते हैं तथा साथ ही 'वाक्य सूत्र' चिन्तन के लिये बाध्य करते हैं यथा– 'काँटा गड़ता तो है पैर में लेकिन दहकता कलेजे में है।' इस उपन्यास की भाषा से इस रचना को आंचलिक भी माना जाता है क्योंकि भाषा–शब्द आदि से विशेष आंचलिक संस्पर्श का आभास होने लगता है यथा– 'जो सुरती न खइहें, तिन जमपुर में जइहें', तोरे करनवां ना आदि।

लेकिन ये शब्द ऊपर से थोपे नहीं गये है बल्कि ठेठ ग्रामीण शब्द भाषा में इस प्रकार रच–बस गये हैं कि माटी की सहज महक व्याप्त हो जाती है। लेकिन सिर्फ भाषा और परिवेष के आधार पर इसे मात्र आंचलिक उपन्यास की दृष्टि से देखना सही नहीं होगा। ''एक अंचल के जीवन कें स्केच में तो आंचलिक उपन्यास लगता है किन्तु अभिव्यक्ति और चिन्तन की गहराई के कारण आंचलिकता की परिधि को तोड़कर व्यापक राष्ट्रीय जीवन का चित्र बन जाता है।'' क्योंकि उपन्यास का कथानक भारत के एक–एक गाँव का प्रतिनिधित्व करता है चाहे वे पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँव हों या भारत के अन्य प्रदेश के गाँव। उपन्यास का कथ्य

मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं तथा तनावों से तथा आम आदमी की विडम्बनाओं, पीड़ाओं और संघर्षों से गुजरने का प्रयास करता है जो सम्पूर्ण देशव्यापी है। कथोपकथन पात्रों के अनुकूल है, प्रवाहमयी है, ग्रामों में बोले जाने वाले सहज शब्दों का प्रयोग किया गया है। वैसे भी डा. राय भाषा के धनी है। अपनी लोक भाषा से उन्हें बल मिलता है इसलिये भोजपुरी के शब्द थोपे नहीं बल्कि 'नग' की तरह जड़े हुये लगते हैं । वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि ''जहाँ कही प्रभाव मार्मिकता उत्पन्न करने की आवष्यकता महसूस होती है अनायास मेरी लेखनी से भोजपुरी के शब्द उछल जाते हैं।..... लोकजीवन और लोकभाषा में बहुत बल है।'

उपसंहार

डा. विवेकी राय जी हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ आंचलिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने आधुनिकता की 'होड मरोड़' में तड़पते पूर्वी उत्तर प्रदेश के पिछड़े गाँवों की समस्याओं एवं संस्कृति को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। आंचलिक उपन्यास संरचना का मुख्य प्रदेय कथागत बिखराव ही हैं। यह डा. रायजी के 'बबूल', 'लोकऋण', 'सोनामाटी', 'मंगलभवन'एवं 'नमामिग्रामम' में प्रत्यक्ष रूप में द्रष्टव्य है। हर एक उपन्यास में प्रमुख कथा के साथ उपकथाओं का भरमार है। इनमें मुख्यतः जमींदारी शोषण से उत्पीड़ित गरीब एवं कृषकों की जीवंत गाथा है। नवपूँजीपतियों एवं राजनैतिक तिकड़मियों की हड़पनीति भी उकेरा गया है। लोकजीवन को प्रधानता देने के उपलक्ष्य में कहावतें, मुहावरें, लोककथा एवं लोकगीत का समावेश भी उपन्यास में पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित है। अंचल की संस्कृति प्रोज्जवलित करने के लिए विवाह एवं मृत्यु के समय पालने वाली अनेक रूढ़ियों, प्रथाओं और मनौतियों का मनोरम संयोजन भी इसमें है।

निष्कर्ष

कथा विन्यास में वैविध्य एवं वस्तुनिष्ठता आंचलिक उपन्यास की खूबी है। कथागत नैरन्तर्य और अविरलता के अभाव के साथ–साथ कथा तंतुओं में सुसम्बद्धता स्पष्ट परिलक्षित नहीं होती। उनका आंतरिक एकात्म्य घटना और पात्रों से सम्बन्धित न होकर अंचल की समग्रता एवं संपूर्णता उजागर करना होता है। इस संदर्भ में डा. रामदर्श मिश्र का मत समीचीन है, ''क्यांकि अंचलीय वातावरणों की बहुवर्णनों की स्थिरता तथा कथा की गत्यात्मक प्रकृति में विरोध है। दूसरे वातावरण की प्रधानता के कारण कुछ ऐसे दृश्यों का समावेश भी हो सकता है, जिनका कथानक से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता और कथा उनके बिना भी गतिशील रह सकती है। तीसरे, व्यक्ति विशेष की नहीं, संपूर्ण अंचल की कहानी– बहुसंख्यक पात्रों की अपनी–अपनी कहानी के कारण भी उसमें परंपरित कहानी का सुगठन स्थिर नहीं रह सकता। डा. विवेकीरायजी के उपन्यासों में भी इतनी अधिक कथाएँ, उपकथाएँ, लोककथाएँ एवं लोकजीवन के विविध पहलुओं का सविस्तार वर्णन आदि के कारण कथानक बिखराव द्रष्टव्य है।'

संदर्भ

1. पुरूष पुराण– डा. विवेकी राय– भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्र.सं. 1975, पृ. 5
2. लोकऋण– डा. विवेकी राय– विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1976, पुनरावृत्ति, 1998, पृ. 62–63
3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामजीवन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1974, पृ. 276
4. साहित्यालोचन– डा. श्यामसुंदर दास– इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, दसवीं आवृत्ति– 2008, पृ. 236
5. हिन्दी उपन्यासः एक अर्न्तयात्रा– डा. रामदरश मिश्र– राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1968, पृ. 192
6. उपन्यास की स्थिति और गति– डा. चन्द्रकान्ता बांदिवड़ेकर–पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ. 2
7. स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य और ग्राजीवन– डा. विवेकी राय– लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1974, पृ. 431
8. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा– डा. रामदरश मिश्र– राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1968, पृ. 194
9. डा. जवाहर सिंह– नाशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली– सं. 1986, पृ. 132
10. बबूल– डा. विवेकी राय– अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1967, 2001, पृ. 25

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.